ISSN 2395-031X

लोक साहित्य में जीवन सत्य

डॉ. सरिता जैन

प्राध्यापक हिन्दी

शासकीय कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर (म.प्र.)

सारांश :-

लोक साहित्य ग्रामीण जीवन का मौखिक साहित्य होता है। इस साहित्य में धर्म, समाज एवं सदाचार संबंधी अनमोल सामग्री का भण्डार है। "लोक-साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है जिसमें जनता-जनार्दन का अखिल तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण प्रतिबिंबित होता है। कई मामलों में तो लोक-साहित्य को शिष्ट साहित्य से भी श्रेष्ठ माना गया है, इतना ही नहीं उसे शिष्ट साहित्य की तुलना में अधिक प्रमाणिक भी माना जाता रहा है। लोकोक्तियाँ लोक साहित्य का ही हिस्सा होती हैं और लोक समाज की भीतरी चेतना इनमें व्यक्त होती है।

मुख्य शब्द- लोक साहित्य, ग्राम्य, प्रतिबिम्ब।

किसी भी देश के राष्ट्रीय जीवन को समझने के लिए उस देश के लोक साहित्य को जानना अति आवश्यक है। लोक-साहित्य का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिंब इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ? लोक साहित्य की निर्मल निर्झरिणी में अवग्रहन कर केवल शरीर ही पवित्र नहीं होता प्रत्युत आत्मा भी प्रसूत और पावन बन जाती है। इसमें जिस समाज का चित्रण किया है वह स्वस्थ, सदाचारी एवं धर्म भीरू है।"[1]

लोकोक्तियाँ अथवा लोक कहावत समाज की साहित्यिक, सांस्कृतिक धरोहर होती है, यह बात एक अरसे से कही, लिखी और पढ़ी जा रही डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय - ने लोक साहित्य की भूमिका में कहा है कि "लोक साहित्य जनता का वह साहित्य है जो जनता के द्वारा जनता के लिए लिखा जाता है।"[2] डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने - लोक साहित्य को ग्रमीण जनता का नीति शास्त्र कहते हुए लिखा है कि "एक ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति जिसमें लोक में युगीन वाणी, साधना में समाहित रहती है तथा जिसमें लोक जन-मानस प्रतिबिंबित रहता है, लोक साहित्य माना जाता है।"[3] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दो में-"जो चीजें लोकहित में सीधे उत्पन्न होकर सर्व साधारण को आन्दोलित, चलित और प्रभावित करे वह लोक-साहित्य है।"[4]

आधुनिक काल में लोक साहित्य ने जब विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया तो पता चला कि लोक शब्द का अर्थ कही तो बहुत ही व्यापक है और कहीं एकदम संकुचित। 'लोक' शब्द को परिभाषित करते हुए डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय' ने लिखा है - लोक एक व्यापक शब्द है, अपने परिसर से लेकर जितना दूर तक पाँव तले की भूमि जाती है वहाँ तक का विस्तार 'लोक' ही हैं इस ब्रम्हांड में अनेक लोक हैं।पृथ्वी भी उनमें एक है। इसे भी विभाजित करते हुए इसकी तुंगता को 'स्वर्ग' अतलता को पाताल तथा समतलता को मृत्युलोक कहा गया

 ISSN 2393-851X

है। पृथ्वी से आकाश तक भूः भवः स्वः मह जन तथा सत्य लोक गिनाए जाते है। लोक वैसे सम्पूर्णता बोधक शब्द है। 'समाज' शब्द लोक की तुलना में छोटा है। एक लोक में कई समाज रह सकते है, परन्तु एक समाज में एक लोक का सामना ही कठिन है। लोक व्याप्ति की दृष्टि से ही बड़ा नहीं है, संख्या की दृष्टि से भी बड़ा है। इसी पुरातनता तथा सम्नातनता पर प्रश्न चिन्ह लगाना कठिन है। समाज तो आज बना, कल बिगड़ा परन्तु लोक संबंध में ऐसा नहीं है।''[5] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' को परिभाषित करते हुए अपना मत इस प्रकार दिया है - ''लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गाँव में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।''[6] अतः लोक का वास्तविक अर्थ उस ग्रामीण जनसमूह से है जो सीधी, निश्छल एवं ईमानदार है। इस जन-समुदाय में अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार का पूर्ण अभाव होता है। यह वर्ग सिर्फ और सिर्फ प्राचीन परंपरा के आधार पर अपने जीवन को गति प्रदान करता है। एक अन्य लोकसाहित्यविज्ञ के अनुसार - ''जीवन मूल्यों तथा भारतीय समाज की परम्पराओं से जुड़ा होने के कारण लोक साहित्य समय की धरोहर है तथा इसका मूल स्रोत हमारी भारतीयता है।''7 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उन चीजों को लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा है जो लोक-चित्त से उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आंदोलित करती है। आपके अनुसार ''ऐसा मान लिया जा सकता है कि जो चीजें लोक-चित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्वसाधारण को आन्दोलित, चालित और प्रभावित करती हैं वे ही लोक-साहित्य, लोक-शिल्प, लोक-नाट्य, लोक-कथानक आदि नामों से पुकारी जा सकती हैं लोक-चित्त से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है जो परम्परा प्रथित और बौद्धिक विवेचनापरक शास्त्रों और उन पर की गई टीका-टिप्पणियों के साहित्य से उपरिचित होता है।''[8] अतः लोक-चित्त से पैदा होकर जन-सामान्य को आन्दोलित एवं प्रभावित करने वाली सामग्री ही लोक-साहित्य के नाम से जानी जाती है। यकीनन लोक-साहित्य की उपर्युक्त कही गई समस्त विशेषताएँ लोक कहावतों में होती हैं। सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजावस्था में 'वर्तमान जो निरक्षर जनता है उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में प्राप्त होता है, उसे लोक-साहित्य कहते है। अतः लोक गाथाएँ, कथाएँ एवं लोकगीत एवं लोक नाट्य आदि स्थानीयता की झलक विशेष रूप से मिलती है। यही कारण है कि जिस देश या प्रांत में जो गीत प्रचलित हैं उनमें वहाँ के सामान्य लोगों के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान तथा आचार-विचार, व्यवहार का जीता-जागता चित्रण दिखाई देता है। लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोकगीत भारतीय ग्रामीण संस्कृति की प्राचीन परंपरा है। लोकगीतों के माध्यम से नारी उत्पीड़न को अच्छी तरह से चित्रित किया गया है। डॉ. सावित्री वशिष्ठ ने हरियाणवी लोकगीत के माध्यम से एक ऐसी दुखी नारी का चित्र प्रस्तुत किया है जिसे सास-ननद द्वारा उत्पीड़ित किया गया है। सावन के महीने में उसका भाई अपनी बहन को घर ले जाने गया है। बहन अपने भाई से रोती हुई कहती है -

''किसीया के दुख में बेब्बे दूबली,
किसीया नै बैल्ले सै बोल, सामण आया गूंजता।
सासड़ के दुःख में दूवली, वीरा नणदी नै बोल्ले सै बोल, सामण आया गूंजता।
सासू त वीरा चूले की आग,
ननद भादो की वीजली, सामण आया गूंजता।?

देवर सांप सपोलिया,
जेठा बीरा बीछू का डंक, सामण आया गूंजता।[9]

लोक साहित्य हमारे लिए आज भी प्रेरक और प्रभावकारी शक्ति-स्रोत के रूप में मूल्यवान है। लोक-साहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन प्राप्त होता है, उतना अन्यत्र नहीं। किसी समाज में होने वाले सामाजिक कार्यों, व्यवहारों, परंपराओं, प्रचलित प्रथाओं, विश्वासों आदि का जीवंत चित्र हमें लोक साहित्य में ही प्राप्त हो सकता है। प्राचीन काल में भारतीय समाज का ढांचा किस प्रकार का रहा है यह लोकगीतों, लोक-कथाओं, लोकोक्तियों में भली-भाँति समझ में आ जाता है। सास-बहु का कटु संबंध, ननद-भौजाई का वैमनस्य, अनमेल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, विधवा की दशा का मार्मिक एवं यथा तथ्यपूर्ण वर्णन किसी लिखित रूप में उतना नहीं मिलेगा, जैसा लोक-साहित्य में।[10] अतः लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जो सामूहिकता, लगाव एवं अपनापन, मानवीयता तथा विकसित जीवन की आशा-अभिलाषा की जागृति मानव हृदय में उत्पन्न करता है। आज के भाग-दौड़ भरे दौर में चारों ओर छल-कपट, भ्रष्टाचार, विश्वासघात आदि से हर व्यक्ति व्याकुल एवं परेशान है, ऐसे कठिन दौर में लोक-साहित्य की माधुर्यता, सहजता, मानवीय, गरिमा तथा करूणा से मुनष्य बहुत कुछ हासिल कर रहा है और आगे भी करता रहेगा। अतः लोक-साहित्य की इसी अपादेयता के कारण ही यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगा कि लोक-साहित्य में मानवीय समाज के जीवन-सत्य की सच्चाई निहित है अथवा लोक-साहित्य में जीवन-सत्य समाया हुआ है।

संदर्भ :

1. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 273
2. डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 40
3. डॉ. अनीता गांगुली, कहावतों की संस्कृति, तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 73
4. डॉ. सरोजिनी रोहतगी, अवधी का लोक साहित्य पृष्ठ 27
5. डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय, लोक विश्वासों की प्रासंगिकता (लेख), इन्द्रप्रस्थ भारती (पत्रिका) जुलाई-सितम्बर 1998, दिल्ली पृष्ठ 66
6. डॉ. रामनिवास शर्मा, लोक साहित्य का लोकतत्व, पृष्ठ 11
7. अरूणेश कुमार अहिरवार, लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति विमर्श के विविध आयाम, पृष्ठ 79
8. आचार्य हमारी प्रसाद द्विवेदी, विचार और वितक्र, पृष्ठ 206
9. डॉ. सावित्री वशिष्ठ, ब्रज और हरियाणा के लोक साहित्य में चित्रित - लोक जीवन, पृष्ठ 299
10. डॉ. रामनिवास शर्मा, लोक साहित्य का लोकतत्व, पृष्ठ 44

❖ ❖ ❖